International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 504-508

वैदिक युगीन ग्राम एवं ग्राम का स्वरूप : एक अध्ययन

डॉ० चौधुरी शिवव्रत महान्ति

निदेषक, कृष्णराव शोध संस्थान, मानसेवी व्याख्याता, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति व पुरातत्व विभाग, रानी दुर्गावती विश्व विद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारत वर्ष में प्राचीनकाल से ही ग्रामों में जनसमूह के रहने का उल्लेख प्राप्त होता है। लोगों के छोटे–छोटे समुदाय जहाँ निवास करते हुए अपने जीवन का निर्वाह करते थे उसे एक 'ग्राम' की संज्ञा प्राप्त थी। ग्राम राष्ट्र की एक इकाई है। ग्राम, नगर (पृट) देष तथा राष्ट्र उत्तरोत्तर बढ़ते क्रम में सामाजिक ऐक्य को प्रदर्षित करते हैं। प्राचीन भारत में ग्राम–व्यवस्था थी। ग्राम–पंचायत–संस्थाएँ कार्य करती थीं। सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है, जिसमें 'ग्राम' षब्द का उल्लेख अनेकत्र हुआ है।

'ग्राम' शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से है, जैसे–जो अपने में ग्रहण या ग्रसन करें अथवा जहाँ पर जाने से मन रमित/आनन्दित हो अर्थात् भोग्यस्थान का नाम ग्राम है।

'ग्रामः ग्रहणाद्वा ग्रासनाद्वा गमनेन यत्र रमणाद्वा ग्रामः ।।'

राजस्व रिकार्ड के आधार पर एक सीमित परिधि यानि ''हरबस्त'' ग्राम कहलाती है।

पतंजलि ने महाभाष्य में जनसमुदाय के निवास स्थानों के चार नाम बताये हैं : ग्राम, घोष, नगर, संवाह। प्रष्न उठा – घोषो, नगरं, संवाहः इति (7/3/14) ग्रामः जहाँ पंचकारू (पाँच प्रकार के कारीगर) भी आर्यों के संग ही रहते हैं। ये हैं – नाई, धोबी, बढ़ई, चर्मकार व कुम्भकार। घोष – ग्रामों के निकट बनी झोपड़ी एवं पषुषालाएँ। नगर – प्राचीरयुक्त (परकोटे) के भीतर बने निवास। संवाह – महानगर।

आदिकाल से आज तक भारत का गाँव एक प्रषासनिक इकाई रहा है। परन्तु पारम्परिक रूप से छोटे–छोटे घटकों में बँटा हुआ है, जैसे – स्वर्णकार, कुम्भकार, लौहकार, चर्मकार, बुनकर, नाई, धोबी, बढ़ई, पुरोहित, खेतीहर, बणिक आदि–आदि। हाँलांकि आज के राजनीतिज्ञ इनमें जात–बिरादरी के नाम से फूट डालकर कहीं–कहीं विघटित करने में भी सफल हो जाते हैं, परन्तु ये सभी घटक गाँव में पूरी तरह भाईचारा बनाये रखते हैं। हमारी यही परम्परा आयकर व सम्पत्तिकर हेतु ''हिन्दू अविभाजित/सम्मिलित परिवार''–के रूप में आज तक मान्य है। ''घर का चूल्हा'' भी इसी घटक का प्रतीक है– जिसके अनुसार पंचायत अधिनियम के अन्तर्गत समस्त ग्रामीणों से ''चूल्हा–टैक्स'' वसूल किया जाता है। ''चूल्हा–न्यौत''– चूल्हे के एक–एक व्यक्ति को ''भोज'' पर आमंत्रण की भी पुरानी प्रथा है ।

गाँव का परिवेष तब अत्याणिक रमणीक था और नैसर्गिक। जलाषयों के निकट व चारों ओर बड़, पिलखन, पीपल, कदम्ब, नीम, अषोक, आम, जामुन, बेल–पत्र, हरड़, आँवलों के बहुतायत में वृक्ष होते थे। पशुओं के लिये खुले चरागाह, सुन्दर वन–उपवन, किसानों के खुले खेत–खलिहान, मन्दिर–षिवालय व गुरूकुल, वानप्रस्थी व सन्यासियों के आश्रम। सभी प्रकार की आवष्यक साधन–सुविधाएँ ग्राम में ही उपलब्ध थीं– एक स्वायत्त इकाई। नगरों–महानगरों की ओर पलायन की तो बात कोई सोच ही नहीं सकता था। वैदिकयुगीन गाँवों की कुछ झलक ऋग्वेद व यजुर्वेद की निम्न ऋचाओं (हिन्दी भावार्थ के साथ) में देखने को मिलेगी :

1. राष्ट्र के प्रबुद्ध–जन अपनी उन्नति से ही सन्तुष्ट न रहें, अपितु ग्रामीण जन को भी सुखी बनाने में प्रयत्नषील रहें :

इमा रूद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराम प्रभरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विष्वं पुष्टं ग्रामेऽअरिमन्ननातुरम।।
(अजुः 20/17)

(अपने देष के विद्वान ऐसा अनुष्ठान करें जिससे कि ग्रामीण–जन बुद्धिमान बने और समस्त राष्ट्र धन–धान्य व उत्तम पशुओं से युक्त होकर रोग रहित, पुष्टियुक्त और निरन्तर सुखी बना रहे।)

2. आदिकाल से ब्रह्ममुहूर्त में सर्वप्रथम धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का चिन्तन भारतीय परम्परा की एक विषेषता रही है।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत्, धर्माथौं चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेषांष्च तन्मूलान् वेदतत्वार्थ मेवच।।

(मनुष्य ब्रह्ममुहूर्त में उठकर धर्म, अर्थ, कायक्लेष और उनके कारण तथा वेदों के तत्व का चिन्तन करें) मन्त्र–दृष्टा का संदेष –

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विषवदर्षतः।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहिताऽसि यज्ञेषु मानुषः।।
(ऋग्वेद 1/44/10)

वैदिक काल में उषा से पूर्व यज्ञ आरम्भ हो जाते थे। इसी कारण उषा से पहले तेजस्वी अग्नि को प्रकट करते थे। यह अग्नि जिस–जिस ग्राम में जाती थी, वहाँ के रोग–कीटाणुओं को नष्ट करके उस ग्राम की रक्षा करती थी। इसीलिए यज्ञ में इसे सर्वप्रथम प्रदीप्त किया जाता था।

3. भारत के वैज्ञानिकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे अपने देष की प्राकृतिक सम्पदाओं की खोज एवं उनके विष्लेषण से अपने गाँवों, पशुओं, परिवेष, परिवहन–साधानों व जल–स्त्रोतों का समृद्ध बनाकर इन्हें, राष्ट्र के लिये उपयोगी बनायें –

यस्यावासः प्रदिषि यस्य गावा यस्य ग्रामा यस्य विष्वेरथासः।
यः सूर्य उषसं जजान यो अपां नेता सजनास इन्द्रः।।
(ऋग्वेद 2/12/7)

सभी दिषाओं, पशुओं, ग्रामों, शीघ्रगामी विमानों व जल–समुद्रों का नेता–इन्द्र है–उसे जानों, उसका वैज्ञानिक विष्लेषण करो, जिससे हम प्रगति के षिखर पर पहुँच सकें ।

4. वानप्रस्थियों व श्रेष्ठ विद्वानों का यह दायित्व है किवे अपने निजी संगठन/ परिषद् बनाकर जनसामान्य में सामाजिक चेतना जगाने का कार्य करें।

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनष्चकृमा वयमिदं तदवयजाम हे स्वाहा।।
(यजुः 3/45)

ग्रामवासी एवं अरण्यवासी वानप्रस्थी–श्रेष्ठ विद्वानों का संगठन कायम करके, विद्या और उत्तम षिक्षा का प्रचार करते हुए प्रजा/राष्ट्र के सुखों/हितों की उन्नति/वृद्धि में तत्पर रहें।

5. तब सभी ग्रामवासियों से यह अपेक्षा की जाती थी किवे कोई बुरा काम न करें। दोषी व्यक्ति को सामूहिक क्षमा–याचना करनी पड़ी थी और एतदर्थ प्रायश्चित भी।

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
चच्छूद्रे यदर्ये यदेनष्चकृमा वयं तदेकरस्याऽधि धर्मणि तस्याव यजनमसि।।
(यजुः 20/17)

ग्रामवासी एवं अरण्यवासी कोई पाप न करें । यदि जाने–अनजाने या भूल में कोई पाप हो जाए जो उसे अपने कुटुम्ब, विद्वानों या राजभाषा में सच–सच कह दें और भविष्य में ऐसा न करने का वचन दें।

6. अपने आर्थिक आर्थिक कष्टों से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय है– मेहनत और परिश्रम। कठोर श्रम से ही इस वसुन्धरा का भोग किया जा सकता है– ''श्रमभोग्या हि वसुन्धरा''। इस ऋचा में गाँवों को समृद्ध बनाने के लिए स्थानीय बाँधों व जलाषयों का भी विषेष महत्व दर्षाया है –

यदङ्गत्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्तः आवोवृणे सुमतिं यज्ञियानाम्।।
(ऋग्वेद 3/33/11)

विद्या समापन पर जैसे विद्वान समस्त ज्ञान को प्रापत कर लेते हैं, उसी प्रकार अपने देष के सभी ग्रामवासी मेहनत व परिश्रम से समस्त दुःखों को समाप्त कर सुख को प्राप्त करें।
ग्रामों में सिंचाई के लिये स्थानीय बाँध व जलाषयों का भी निर्माण हो। (सर्गतक्तः – जलास्य संकोचकः, निघण्टू 1/12 के अनुसार सर्ग का अर्थ जल है।)

7. जनमानस के हृदय में तब ग्रामीण किसान के लिये कितनी आस्था थी। आज भी गाँव का किसान शतहस्तों से अन्न उत्पादन करता है और सहस्रों हस्तों से सारा अन्न राष्ट्र को समर्पित कर देता है–

''षतहसतं मसाहर, सहस्रहस्तं संकिर''।
''इदं राष्ट्राय स्वाहा। इदं राष्ट्राव इदन्न मम''।
सहस्रदा ग्रामणीमी रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिण।।
सावर्णेः देवाः प्रतिरन्त्वायुः यस्मिन्नश्रान्ता असनामस वाजम्।।
(ऋग्वेद–10/62/11)

भरपूर अन्न व हजारों गौओं के दाता, ग्रामीणजन के नेता का कोई भी अनिष्ट न करें। द्वारा प्रदत्त दक्षिणा सूर्य के समान तीनों लोकों में प्रतिष्ठा पाए। इन्द्राहि देवता इस सावर्णि मानव की आयु और अधिक बढ़ायें– जिससे कि अपने कार्यों में कभी आलस्य न करने वाले हम इससे अन्न प्राप्त करते रहें।

8. भारत माँ का असली लाड़ला सपूत तो गाँव यका मेहनती किसाान व दान देने वाला सरपंच ग्रामाध्यक्ष) है :

दक्षिणावान् प्रथमोहूत एति दक्षिणावान ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नतितिं यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय।।
(ऋग्वेद–10/107/5)

दाता को सबसे पहले बुलाया जाता है, वही सबसे प्रमुख माना जाता है। दक्षिणा देने वाला दात ग्रामाध्यक्ष सबसे आगे चलता है, उसे ही मैं सबका पालनहारा राजा मानता हूँ जो मनुष्यों के बीच में सबसे पहले दक्षिणा देता है।

9. सविता देव के आह्वान के लिये गाँव की गौओं, अष्वों व बछड़ों की उपमा कितनी सरस, नैसर्गिक एवं हृदय ग्राह्य हैं–

गाव इस ग्रामं युयूधिरिवाष्वान् वाश्रेववत्सं सुमना दुहाना।
पतिरिव जायामभि नोन्येतु धर्ता दिवः सविता विष्ववारः।।
(ऋग्वेद–10/146/4)

जिस प्रकर जंगल में चरने वाली गाएँ शाम को अपने गाँव को लौटती हैं, योद्धा युद्ध हेतु अपने घोड़े के निकट जाता है, दुधारू गौवें जिस प्रकार अपने बछड़े के पास जाती हैं, पति जिस प्रकार अपनी पत्नी के निकट पहुँचता है, उसी प्रकार देवलोक का धारक हमारे द्वारा प्रार्थनीय सविता देव अविलम्ब हमारे पास आए।

10. केवल मात्र शारीरिक श्रम से कहीं जीवन बोझिल व दूभर न बन जाए–इसलिये राजा मामन्यजनों व विषेषज्ञों (ग्रामीधीष, ज्योतिषी व उद्घोषकों आदि) के लिये रूचिकर क्रियाकलापों की भी व्यवस्था करें –

.... ग्रामण्यं गणकमभिक्रोषकं तान्महसे....।
.... आनन्दाय तलवम्।।
(यजुर्वेद)

ईष्वर की भाँति राजा भी ग्रामाधीष, उत्तम ज्योतिषी, उद्घोषक आदि विषिष्ट पुरूषों तथा सामान्य–जनों के लिये मनोरंजन का साधन भी जुटाएँ।

11. युद्ध में आज भी और तब भी समाज के लिये अनिवार्य सेवाओं (जल, अन्न, मकान, औषधि आदि) का छिन्न–भिन्न होना बड़ा घातक और दुःखदायी होता है। विजयोपरान्त ग्रामाधीष इन्हीं समस्याओं के समाधान पर सर्वप्रथम ध्यान देता है।

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽयमणो न मरूत कवन्धिनः।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अरवरन् व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्यो अन्धसा।।

ईष्वर घुड़सवार योद्धा अपने शत्रुओं के गाँव जीत लेते हैं, जब वे दुष्मनों पर वेग से धावा बोलते हैं तो आकाष गूंज उठता है। अपनी विजय के उपरान्त वे गाँव के जल–कुण्डों को पानी से परिपूर्ण कर देते हैं और भू–मण्डल को मीठे पानी और स्वास्थ्यप्रद उत्तम अनाज से समृद्ध बना देते हैं।

12. ऋग्वेद की ऋचाा हमें सचेत कर रही है कि हम भी अपना ऐसा प्रतिनिधि चुनें जो सामान्यरूप से समस्त प्रजाजनों और विषेषरूप से गाँव वालों की प्रगति और समृद्धि का समानरूप से ध्यान रखे–

> ''सः ग्रामेभिः सनिता'' ...... जो राजा ग्रामों में रहने वाले प्रजाजनों के साथ अपने देष की सम्पत्ति का सम्यगृ विभाजन (सनिता) करता है, वही ....'' अद्य नः ऊती भवतु'' ...... आज हम लोगों के रक्षा आदि व्यवहारों के लिये राजा बने।
> (ऋग्वेद– 1/100/10)

13. सेने–जागने, खाने–पीने, आसन–प्राणायाम–व्यायाम में संयत–संतुलित व नियमित तथा शारीरिक–बौद्धिक व मानसिक क्रियाओं में सन्तुलन को गीता में ''सकल संकटमोचनहारा योग'' कहा गया है। गग्रमीण–जन पक्षियों की भान्ति स्वस्थ, मधुमक्खियों की तरह व्यस्त और वानरों की तरह मस्त हैं। प्राकृतिक जीवन जीते हैं और सुखी रहते हैं। आधुनिक नगर वासियों की भाँति इन्हें रात्रि–क्लब में बैले–डान्स की हू–हा बिल्कुल पसन्त नहीं। प्रगाढ़–निद्रा का सुख तो दैविक सुख से भी ऊपर है :

> नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि प्रक्षिणः।
> नि श्येनासष्चिदर्थिनः।।

गाँव के सभी व्यक्ति रात्रि को निष्चन्त होकर सोते हैं। पादचारी गौ, अष्व आदि, पशु–पक्षी और तेजगति बाज आदि भी सुख की निद्रा लेते हैं।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में ग्राम की बहुमुखी प्रगति के लिए विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों/यज्ञों का भी विधान किया गया है। सम्भवतः ये सभी अनुष्ठाान भिन्न–भिन्न समय पर दैवी, प्राकृतिक, मानवीय एवं अन्य विपदाओं/समस्याओं के निवारणार्थ यज्ञ के साथ–साथ ग्राम–योजनाएँ भी रही होंगी। इस संहिता में पाठ है– ''ग्रामकामो यजेत'' गाँव की प्रगति की कामना हेतु यजन करें, स्थायी योजनाएँ और उन्हें क्रियान्वित करें। इस संहिता में वर्णित/निर्दिष्ट आपदाओं के निवारणार्थ जिन यजनों/योजनाओं, कामनाओं, का उल्लेख किया गया है, उनमें कुछ ये हैं: ब्रह्मवर्चस–कामना, पापविमुक्ति–कामना, भ्रष्ट–राज्य के विनाष की कामना, प्रजा के लिये समृद्धि–कामना, सूने पशुओं के पुनर्वास की कामना, अन्न–कामना, दान–कामना, लम्बे अरसे से पशु के अज्ञात रोग के निवारण की कामना, संग्राम के लिये प्रयाण के अवसर पर मंगल कामना हेतु भ्रातृ–भावना, सौगन्ध खाकर धोखा देना (षपर्थ कृत्वा द्रुह्यतः) चोर–डाकुओं से पीड़ित ग्रामीणों के कल्याणर्थ कामना, प्रबल इच्छाषक्ति की कामना, चर्मरोग, दीर्घरोग से मुक्ति हेतु, राजा–प्रजा के पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने हेतु, आयु आरोग्य की कामना, त्वग्दोष निवारणार्थ, नेत्ररोग की विमुक्ति हेतु आदि–आदि।

वर्त्तमान परिदृष्यः

भारत के गाँव बेहद उपेक्षा के षिकार हैं। मन्त्रियों की घोषणा को हम 'योजना' नहीं कर सकते–यह तो तानाषाहों की सस्ती लोकप्रियता का एक खोखला तरीका है। प्रजातान्त्रिक तरीका तो यह है कि गाँव की योजना का प्रारूप गाँव की चौपाल में बैठकर ही तैयार किया जाए। वातानुकूलित विषाल–भवनों में बैठकर बनी योजनाएँ तो कोरी कल्पनाओं की उड़ान होगी। लेकिन दिल्ली की इण्डियन सरकार (भारतीय नहीं) को भारत के गाँवों को सम्भालने की फुर्सत ही कहाँ है ? ''जिसके न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।'' ऐसा प्रतीत होता है–यह ऋचा भी इनको ही सम्बोधित कर रही हैं:

> अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नष्यसि।
> कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती।।
> (ऋग्वेद–10/146/1)

हे वनदेवी ! इस वन में जो तू देखते ही देखते तिरोहित हो जाती है, वह तू अपने पड़ोसी गाँव निवासी के बारे में क्यों नहीं सोचती? तुझे उसकी जरा भी चिन्ता नहीं ! तू इस निर्जन वन में ही छिपकर क्यों बैठी रहती है? तुझे गाँव वालों से भी काम पड़ सकता है ! क्या तुझे गाँव वालों से कभी डर नहीं लगता ? वे तुझ पर बहुत क्रोधित हैं।

वनदेवी की भाँति ही सैर–सपाटों में मस्त दिल्ली के तख्त पर बैठे इन बादषाहों पर मन्त्रा–दृष्टा ने तीखा कटाक्ष किया हैं:

''तुम अपने हवा–महलों में क्यों छिपे बैठे हो? ''कथा ग्रामं न पृच्छति''–? गाँव वालों के दुःख–दर्द की बात क्यों नहीं पूछते? कया तुम्हें अपने ग्रामीण मतदाताओं से डर नहीं लगता ? वे सब गुस्से में हैं।''

वेदों में ग्राम का स्वरूप

ऋग्वेद–कालीन समाज को अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि देष का विकास ग्रामों में ही हुआ। ऋग्वेद के एक सूक्त में अ ग्नि को ग्रामों में रक्षा करने वाला बतलाया है–''असि ग्रामेष्वविता पुरोहिताऽसियज्ञेषु मानुषः। ग्रामों में प्रायः अग्नि चूल्हे के रूप में अथवा यज्ञों में विहित होती थी। वैदिक कालीन आर्य वैवाहिक अग्नि में सायं–प्रातः आहुति देते थे। अतः यह अग्नि ग्रामों की रक्षा करती थी, ऐसा विष्वास तत्कालीन समाज में था। ग्रामों से सम्बद्ध अनेक कार्यों का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है। कृषि कर्म उस समय मुख्य उद्योग था। ऋग्वेद कृषि करने का आदेष देता ह।–''अक्षेर्मा दीग्यः कृसिमित् कृषस्व।'' वैन्य नामक राजा हल से भूमि जोतने की विद्या जानते थे, इसका उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि हमारे फाल सुखपूर्वक भूमि का कर्षण करें, हल चलाने वाले सुखपूर्वक बैलों से खेत जोतें तथा मेघ मधुर जल से हमारे लिए सुख की वृष्टि करें और शुनासीर हमें सुख प्रदान करें–

> शुनंनः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाषा अभियन्तु वाहैः।
> शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु यत्र।।

गाँवों में खेतों की जिस तरह माप की जाती है, उसका उल्लेख ऋग्वेद मे प्राप्त होता है। वैदिक काल में अन्न से ग्राम समृद्ध रहते थे। यजुर्वेद में अनेक अन्नों के नाम इस प्रकार दियेि गये हैं–

> ''ब्रीहयष्च मे यवाष्च मे तिलाष्च मे,
> मुद्गाष्च मे स्वल्वाष्च में प्रियङ्गवष्च मे
> अगवश्च मे यामाकाष्च में नीवाराष्च मे
> गोधूमाष्च मे मसूराष्च में यज्ञेन कल्पन्ताम्।

वैदिककाल में भी ग्रामों में आजकल की तरह अनाज की कटाई, मड़ाई आदि होती थी तथा अन्न को भूसे से अलग किया जाता था। इसके स्पष्ट संकेत ऋग्वेद में बहुषः उपलब्ध होते हैं। ग्रामों में खेती की सिंचाई का भी उत्तम प्रबन्ध था जिसके लिए कूप, कुल्या, सुत्पार (नाला) आवद्रय (पोखर) तथा वैषन्त (तालाब) इत्यादि का उल्लेख वेद में प्राप्त होता है। ऋग्वेद इत्यादि में सूर्योदि उषहा तथा अन्य प्रकृति के चित्रण जो प्राप्त होते हैं उनका मूल उत्स

ग्राम ही हैं। ग्राम धन के स्त्रोत हैं। इन्द्र के लिए मरूतों के ग्रामों से धन देने का कथन ऋग्वेद में प्रापत होता है–

स ग्रामेभिः सनिता से रथेभिर्विदे विष्वाभिः कृष्टिभिन्चय।
स पौंस्पैभिरभिभूरषस्ती मरूत्वान् नो भवित्वन्द्र ऊती।।

तैत्तिरीय संहिता में अन्न बोने की भिन्न–भिन्न ऋतुओं का वर्णन प्राप्त होता है। सामवेद के एक मन्त्र में सभी ऋतुओं के अनुकूल होने की कामना की गयी है–

''वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्तु रन्त्यः।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः षिषिर इन्नु रन्त्यः।।

अर्थात् वसन्त और ग्रीष्म ऋतुएँ रमणीय हो, वर्षा, शरद, हेमन्त और षिषिर ऋतुएँ भी हमारे लिए रम्य रहे। यहाँ ऋतुओं का क्रम से उल्लेख है जिसका ज्ञान ग्रामीण संस्कृति के बिना असम्भव है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में ग्राम के प्राणियों की हृष्ट–पुष्टता तथा द्विपद और चतुष्पद का उल्लेख तथा इनके शांति की व्यवस्था होने का वर्णन है–

''इमारूद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।
पथाशमसद् द्विपदे चतुष्पदे विष्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरः।।''

यहाँ ''द्विपद'' मनुष्यों के लिए तथा ''चतुष्पद'' पशुओं के लिए कहा गया है। इससे वैदिक युग में पशुपालन होता था, इसका संकेत मिलता है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में अनेक पशुओं का कथन प्राप्त होता है–

''तस्मादष्वा अजायन्त ये के चोभपादतः।गवो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।।

पुरूष सूक्त में दही से सम्पृक्त धृत का वर्णन ग्रामों की संस्कृति का कथन करता है। सर्वहुत पाग से ग्राम्य पशुओं का प्रादुर्भाव भी पशुपालन का स्पष्ट संकेत है। वन्य पशु भी थे और ग्रामों में पशुपालन भी होता था। जैसा कि उल्लेख आया है–

''तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशून् ताँष्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याष्च ये।।''

अथर्ववेद में भी आरण्य (वन) तथा ग्राम्य पशुओं का उल्लेख है–

''पार्थिवा दिन्याः पशवः आरण्या ग्रामाष्च ये।''

इससे ग्रामों में पशुपालन होता था तथा वैदिककाल में पशु अथवा गायें ही मुख्य धन थीं। इसलिए ग्रामों की पर्याप्त समृद्धि का ज्ञान होता है। गाय, अष्व, बकरी, भेड़ तथा कुत्ते पालतू पशु थे। बैल के अनेक रूपों का वर्णन वैदिक संहिताओं में प्राप्त होता है। ऋषभ, अरूण, दिव्यवाह, पंचावि, त्रिवत्स, तुर्यवाह, प्रष्ठवाह आदि अनेक नाम बैलों के लिए विभिन्न अवस्थाओं में दिये जाते थे। गाय तो सबसे प्रिय तथा पवित्र पशु था जिसे रूद्रों की माता, वसुओं की पुत्री तथा आदित्यों की बहन के रूप में प्रस्तुत करते हुए वेद में उसे अहिंसनीय बतलाया है। इस प्रकार कृषि तथा पशुपालन की दृष्टि से वैदिक ग्राम पर्याप्त विकसित थे।

'ग्राम' शब्द का अर्थ मनुष्यों के समुदाय का वासस्थान है परन्तु यह नगर की संस्कृति से भिन्न है। खेत, नदी, जंगल तथा सरोवर इत्यादि के आसपास मनुष्यों के घरों का समूह ग्राम शग, से अभिधेय हो सकता है। ग्रामों में कदाचित् इसीलिए भेड़िए आदि का आतंक रहता था जिसका उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। वेद का कथन है कि ग्राम केवल मनुष्यों का ही नहीं अपितु पक्षियों इत्यादि जीवन–जन्तुओं के सुखपूर्वक शयन का निश्रब्ध था–

''नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः।
नि श्येनासष्चि दर्षिनः''

शत्रुओं तथा जंगली जानवरों से रक्षा हेतु वेदों में अनेक मन्त्र आये हैं जिसमें ग्राम की भी रक्षा करने की स्तुति की गयी है। ऋग्वेद में वीर मरूतों से उत्तम अन्तःकरण के द्वारा ग्रामों की रक्षा करते हुए बृद्धि के वर्द्धन की प्रार्थना इस प्रकार है–

''यूयं न उग्रा मरूतः सुचेतुनाऽरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्त न।''

इसी प्रकार इन्द्र के लिए कहा गया है कि ये सम्पूर्ण गाँव, गायें, रथ और घोड़े इन्द्र के ही हैं–

''यस्याष्वासः प्रदिषि यरस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विष्वे रभासः।।

यहाँ उल्लेखनीय है कि उपुर्यक्त कथन इसीलिए हैं कि इन्द्र इन ग्रामों, अष्वों तथा रथों की रक्षा करे। एक राजा दूसरे राजा के ग्रामों को युद्ध इत्यादि के द्वारा जीत लेता था। इसका उल्लेख 'ग्राम जितो यथा नरो' इस मन्त्र भाग में किया गया है कदाचित् इसीलिए ग्रामों की रक्षा का अभिप्राय था।

वैदिक ग्रामों में कृषि तथा पशुपालन के अतिरिक्त अन्य अनेक धन्धे प्रचलित थे, कुलाल (कुम्हार), कार्मार (लोहार), चर्मम्न (चर्मकार), वप्ता (नाई), तथा भिषक् (वैद्य) भी ग्रामों में अपना उद्योग करते थे । ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर इनका उल्लेख प्राप्त होता है। ग्रामों में वस्त्रों के बुनने, चटाई (कषिपु) बनाने तथा विभिन्न ग्रामोद्योग–व्यापार इत्यादि का पर्याप्त संकेत वेदों में उपलब्ध हैं। 'पणि' लोग व्यापार का कार्य करते थे। वैदिक काल में ग्रामीण ऋण लेकर उसका ब्याज भी चुकाते थे। वेद में 'बेकनाट' षब्द आया है जिसका अर्थ निरूक्त के अनुसार 'ब्याज खाने' वाले हैं। इस प्रकार आजकल की भाँति तत्कालीन समाज में ऋण की सुविधा भी उपलब्ध थी।

वैदिक काल योग प्रधान था और यज्ञ में विहिन घृत, समिधा, पत्र, पुष्प, यूप तथा सोम आदि वस्तुएँ ग्रामों में ही उपलब्ध थीं। इसलिए ग्राम का अपना एक विषिष्ट महत्व था। वेद पाठ भी ग्रामों में बहुतायत होता था। ऋग्वेद का मण्डूकसूक्त इस विषय में प्रमाण है। वेदमन्त्र ध्वनि का अनुकरण कदाचित् मेढक ग्राम के तालाबों, निदयों तथा नालों में ही पाये जाते हैं। सामवेदीय एक प्रकार का गान ग्राम में ही गाया जाता था। इस प्रकार ज्ञान तथा वेदवांग्मय के विकास में ग्रामों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। आर्थिक स्तर के साथ ही साथ ग्रामों का साहित्यिक स्तर भी उच्च था।

वैदिक काल में ग्राम पंचायतें भी थी जिससे ग्राम के प्रषासनिक स्तर का पता चलता है। ऋग्वेद में अनेकत्र 'ग्रामीण' शब्द आया है जो ग्राम प्रधान अथवा नेता के लिए प्रयुक्त होता था तथा वह उनका प्रिय नेता हुआ करता था। संकट के अवसर पर अथवा आवष्यकता पड़ने पर समृद्ध ग्रामणी अपने लोगों को सहस्त्रों गायें (धन) प्रदान करता था। ऋग्वेद में ऐसे ग्रामणी अपने की हिंसा न करने की प्रार्थना की गयी है–'सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्। यजुर्वेद में ग्रामणी को ऋतुओं का प्रतीक माना गया है उसमें प्रषासन की अद्भूत क्षमता होती थी। शत्रुओं से आक्रान्त होने पर उसे सेनापति

के रूप में भी देखा जाता था। यजुर्वेद के दो मन्त्र यहाँ दर्षनीय हैं–

''अयं पुरो हरिकेषः सूर्यरष्मिस्तस्य
रथगृत्सष्च रथौजाष्व सेनानी ग्रामण्यौ।।
अयं दक्षिणा विष्वकर्मा तरस्य रथस्वनष्च
रथे चित्रष्च सेनानी ग्रामण्यौ।।''

ग्रामणी उदार होता था, इसीलिए दक्षिणादान के लिए उसे प्रथम आहूत किया जाता था। ग्रामणी दान देने हेतु सबसे आगे चालता था, वही मनुष्यों का राजा होता था और मनुष्यों में सर्वप्रथम दक्षिणा देता था। जैसा कि कहा गया है–

''दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति।
त्मेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय।।''

अथर्ववेद में भी ग्रामणी के प्रथम कुभिषिक्त होते थे। यथा–

''ग्रामणीरसि ग्रामणीरूत्थायाभिसिक्तोऽभि मा सिंच वर्चसा।''

इस प्रकार देखने से ज्ञात होता है कि ग्राम में ग्रामणी (ग्रामप्रधान) का अत्यधिक सम्मान था। ग्रामणी वही होता था जिसके पास जन–बाहुल्य हो अर्थात् कदाचित् मतदान की प्रिक्रिया रही होगी। यजुर्वेद में 'मह से ग्रामण्यम्'। कहकर ग्रामीण को तेजस्वी और शक्तिषाली बताया है। अतः वैदिक कालीन ग्रामों में प्रषासनिक क्षमता का अभाव नहीं था।
हमारे देष में प्राचीनकाल से ही ग्राम एक संगठित शक्ति थी। ग्रामीणों का स्थैर्य बड़ा प्रसिद्ध था। बच नामक औषधि से स्थैर्य की कामना करते हुए ग्रामीण जनों को उसकी उपमा दी गयी है–

''परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि।''

इससे ग्रामिणों में एकता तथा शक्तिषलिता का बोध होता है। पुर अथवा नगर वासियों की अपेक्षा ग्राामीण अधिक शक्तिषाली तथादृढ़ संकल्पी रहे होंगे। आज भी भारतवर्ष के जनमत का अधिकांष प्रतिषत ग्रामीणों में ही है।
वैदिककालीन ग्रामों में कुछ आततायी तत्व भी थे, जिनसे ग्रामों इत्यादि को हानि पहुँचाती थी। इन वृत्त, शम्बर तथा चुमुरि हैं जिनसे तत्कालीन समाज आतंकित था। इन सबका वध इन्द्र ने किया था। ऋग्वेद में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। पिषाच, चोट तथा दस्युओं से भी ग्रामों का नुकसान होता था। अथर्ववेद में कहा गया है कि पिषाचों तथा चोरों के उन्मूलन में ही कल्याण निहित है। पिषाचों, चोरों तथा डाकुओं के साथ मित्रता रखना उत्तम नहीं है–

न पिषाचैः सं शक्नोगि न स्तेनैर्न वनर्गभिः।
पिषाचाास्तस्मान्तष्यन्ति। न पापमुप जानते।।

ग्रामों के लिए शत्रुओं के आक्रमण का भी भय था। अथर्ववेद कालीन ग्राम समाज में ईर्ष्या–द्वेष तथा आपसी फूट भी देखी जाती है। एक मन्त्र में शत्रु गाँव को छोड़कर भी जायँ ! यह प्रार्थना की गयी है–

''शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः।''

ग्रामों की रक्षा हेतु अथर्ववेद में कहा गया है कि से सवित् देव ! ग्रामों के लिए चारों दिषाओं में बल, ऐष्वर्य और कल्याण करें–

''अस्मै ग्रामाय प्रदिषष्चतस्रः अर्जं सुभूतं स्वस्ति, सविता नः कृणोतु।।''

वैदिक ग्रामों घरों का निर्माण मिट्टी, बाँस, घास (तृण) तथा लकड़ी के द्वारा किया जाता था। यह सारी सामग्रियाँ ग्रामों में ही प्राप्त हो जाती थी। ग्रामों में ही प्राप्त हो जाती थी। ग्रामों में भोजन भी शुद्ध तथा सात्विक था और विभिन्न प्रकार के अन्नों से स्पादिष्ट भोजन जन–सामान्य में प्रचलित था। इस प्रकार वेदिक ग्रामीण जीवन साधारण होते हुए भी अपने में परिपूर्ण था।
वैदिक ग्रामों में जीवन को सुन्दर बनाने तथा पुरूषार्थ को प्राप्त करने के साधनों की न्यूवता नहीं थी। यहाँ तक कि ग्रामीण संगीत विद्या में भी निष्णात थे, सामवेद इस बात का प्रमाण है। साम योग में वैदिकों द्वारा कलकण्ठ से निःसृत सामवेद की स्वरलहरी ग्रामों में गूंज उठती थी। कृषि, व्यापार तथा पषुपालन से ग्राम अत्यन्त समृद्ध थे। दधि, दूध, धृत तथा मधु की कुल्याएँ ग्रामों में ही प्रवाहित होती थी। ग्राम का मुखिया (ग्रामणी) सभी ग्रामीणों की रक्षा करता था। ग्रामों में जाति अथवा वर्ग का भेदभाव नहीं था। सभी वर्ण समाज की एक व्यवस्था से जुड़े हुए थे। वैदिक ग्राम प्रषासनिक दृष्टि से भी उत्तम थे। चोरों, डाकुओं तथा अन्य आततायियों का सभी एकजुट होकर मुकाबला करते थे। इस प्रकार वैदिक ग्राम बहुत विकसित अवस्था में थे। संक्षेप में वैदिक ग्राम्य जीवन अपनी आवष्यक सामग्रियों के लिए किसी अन्य पर आश्रित न होकर पूर्णरूपेण स्वावलम्बी था।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. प्रसन्न दा. सप्रे, समग्र ग्राम विकास सिद्धान्त , वन साहित्य अकादमी, जबलुर
2. ऋगवेद, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. वनस्वर षोध प्त्रिका जून 2002 अंक, वन साहित्य अकादमी, जबलपुर
4. पंडित सातवलेकर भाष्य चतुर्वेद भाष्य व टीका , सातवलेकर षोध संस्थान, पारडी, गुतरात।